६

आसोज शुक्ल १२, रविवार, १८-१०-१९६४
श्री तारणस्वामी द्वारा रचित श्रावकाचार
गाथा-२२१, २२३, २२४, २३६, प्रवचन - २३

श्रावकाचार, तारणस्वामी द्वारा रचित, उनकी २२१ गाथा है। कल २२० हो गयी थी। २२१। देखो! श्रावक का आचरण कैसा होता है और उसको श्रावक कहने में आता है। प्रथम तो...

सम्यकते यस्य चिंतति, बारंबारेन सार्थयं।
दोष तस्यं न पस्यंते, सिंध मातंग जूथयं॥२२१॥

क्या कहते हैं? देखो! जो कोई सम्यग्दर्शन को यथार्थरूप से। '**सार्थयं**' है न? यथार्थरूप से। यथार्थरूप का अर्थ क्या? नौ तत्त्व जैसे हैं, ऐसा यथार्थ ज्ञान करके। भिन्न-भिन्न नौ तत्त्व का कार्य है। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। उसमें दो द्रव्य है और सात पर्याय है। उसका नौ का भिन्न-भिन्न कार्य है, भिन्न-भिन्न मार्ग है। ऐसा बारम्बार निर्णय करके, बाद में यथार्थपने बारम्बार आत्मा का अनुभव करना। '**चिंतते**' का अर्थ अनुभव है। '**चिंतते**' (शब्द) है न? उसका अर्थ अनुभव है।

'**सम्यकतं यस्य चिंतति**' सम्यग्दर्शन-आत्मा परिपूर्ण शुद्ध, पुण्य-पाप का विकल्प से, देहादि से, कर्म से भिन्न ऐसा समकित को '**यस्य**' जो कोई '**चिंतति**' नाम अनुभव करता है अन्दर में। '**बारंबारेन सार्थयं**'। बारम्बार अनुभव में लगता है। अन्तर्मुख राग और पुण्य-पाप का भाव, उससे भिन्न अपने आत्मा को अन्तर में बारम्बार यथार्थपने लगता है। यथार्थ क्यों कहा? अनादि से अज्ञानी अपनी कल्पना से माने कि ऐसा नौ तत्त्व और ऐसा-ऐसा है। विकल्प और कल्पना से आत्मा में एकाग्र हो, वह यथार्थ एकाग्रता नहीं है। समझ में आया? बारम्बार अर्थात् बारम्बार अनुभव करते हैं। (यह) '**चिंतते**' का अर्थ है।

'**दोष तस्यं न पस्यंति**'। उसको दोष नहीं आते हैं। उसका दोष अन्तर में आते नहीं। स्वभाव की दृष्टि में दोष का आदर होता नहीं। समझ में आया? कहो, सेठी! भगवान आत्मा... बाद में २२३ में कहेंगे। एक समय में नौ तत्त्व में ज्ञायकतत्त्व, पुण्य परिणाम— दया, दान, भक्ति, व्रत का विकल्प है, वह पुण्यतत्त्व है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना पापतत्त्व है। दोनों मिलकर आस्रवतत्त्व है। त्रिकाल ज्ञायक आनन्द शुद्ध स्वभाव (है)। राग में जितना रुकता है, इतना भावबन्धतत्त्व है। शरीर, कर्म आदि अजीवतत्त्व है और त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि करने से शुद्धि की उत्पत्ति होती है, वह संवरतत्त्व है। विशेष एकाग्रता होने से शुद्धि की वृद्धि होती है, वह निर्जरातत्त्व है और पूर्ण शुद्धि की प्राप्ति होती है, उसका नाम मोक्षतत्त्व है। समझ में आया?

ऐसी बात जैनदर्शन अथवा आत्मदर्शन बिना तीन काल में दूसरे स्थान में ऐसा होता नहीं। इसलिए '**सार्थयं**' यथार्थ रूप नौ तत्त्व का भान कर, आत्मा का बारम्बार अनुभव करते हैं। '**दोष तस्यं न पस्यंते**' वहाँ दोष आते नहीं। अल्प दोष होते हैं, उसे अपने में मिलाते नहीं। सम्यग्दृष्टि तीन कषाय, दो कषाय का रागादि होता है, परन्तु अपने स्वभाव में मिलाते नहीं। समझ में आया? शास्त्र वाँचन में बहुत जिम्मेदारी है। सर्वज्ञ परमात्मा देवाधिदेव तीर्थंकरों, गणधरों, सन्तों से अनादि से जो प्रवाह से मार्ग चला आ रहा है, उसमें से एक भी फेरफार बदाममात्र हो जाए (तो) सारे तत्त्व में विरोध हो जाए। समझ में आया? इसलिए यहाँ '**सार्थयं**' (कहा है)। बराबर यथार्थपने बारम्बार सम्यग्दर्शन की चीज़ को अनुभव में करते हैं, उसको '**दोषं तस्य न पस्यंते**'। उसको दोष आता नहीं। कैसे?

'**मातंग जूथयं**' हाथी के झुण्ड सिंह को नहीं देखते हैं। समझ में आया? जहाँ सिंह है, वहाँ हाथी रहता नहीं। जहाँ सिंह की गर्जना सुने, हाथी का समूह चला जाता है। है न? '**सिंघ मातंग जूथयं**'। '**मातंग**' अर्थात् हाथी का समूह हो, एक सिंह की गर्जना हो, चले जाते हैं। ऐसे भगवान आत्मा अपने सम्यग्दर्शन का टंकार, रणकार अन्दर में अनुभव में करते हैं, दोष चला जाता है। दोष रहता नहीं। दोष पलायमान हो जाता है। थोड़ा दोष रहता है, उसका भेद रहता है, उसका नाम पलायन कहने में आता है। समझ में आया? दृष्टान्त दिया है न? सिंह को नहीं देखते। नहीं देखते का अर्थ हाथी वहाँ खड़ा ही नहीं रहता। जहाँ सिंह है, वहाँ हाथी नहीं रहता।

इसी तरह अपना स्वरूप एक समय में विकल्प आदि हो, रागादि हो, शरीरादि हो, है सब (अस्ति)। उससे निराला अपना स्वरूप का अनुभव दृष्टि करनेवाला अपने में सिंह की भाँति स्वभाव की एकाग्रता की पुकार रण पुकार (करता है तो) दोष आते नहीं। '**दोष तस्यं न पस्यंति**' समझ में आया? उसको दोष अन्तर में होता नहीं। उसको सम्यग्दृष्टि कहते हैं। ये अविरत सम्यग्दृष्टि का श्रावकाचार (है)। समझ में आया? अभी आया नहीं? कौन-सी गाथा आयी? २५४? अभी २५४ कही न? भाई! देखो! '**आचरण द्विविधं प्रोक्तं**' उसके साथ सम्बन्ध है। यह श्रावकाचार है न? तो '**आचरण द्विविधं प्रोक्तं**' ऐसे लेना। '**त्रिविधं प्रोक्तं**' नहीं लेना।

भगवान परमात्मा ने आचरण दो प्रकार का '**प्रोक्तं**' सविशेष से कहा है। एक, सम्यक्त्व, एक संयम। प्रथम '**प्रथमं सम्यक्त्व चरणस्य, स्थिरी भूतस्य संजम।**'

चारित्रं संयम चरणं, शुद्ध तत्त्व निरीक्षणं।
आचरणं अबंध्य दिस्टे, सार्धं शुद्ध दृष्टितं॥२५५॥

देखो! आचरण दो प्रकार का कहा गया है। आचरण का दो प्रकार है। एक, सम्यक्त्व आचरण। समझ में आया? सम्यक्त्व आचरण का अर्थ अपना शुद्ध चैतन्य राग और पर से रहित एकाकार का दर्शन होना, वह सम्यक्त्व आचरण नाम का प्रथम आचरण कहने में आता है। कोई कहे कि आचरण-बाह्य क्रिया करे, वह आचरण है। यह आचरण है, वह आचरण नहीं है। समझ में आया? पहला सम्यक्त्व आचरण है। सम्यग्दर्शन में पहला सम्यक् आचरण है। पण्डितजी!

दूसरा, निश्चय संयम आचरण। दूसरा सम्यग्दर्शन होने के बाद स्वरूप में चारित्र की विशेष लीनता। अनाचरण रागादि को छोड़कर स्वरूप में स्थिरता उग्रपने करना, वह संयमरूपी दूसरा आचरण है। परन्तु जिसको सम्यग्दर्शन आचरण होता है, उसको संयम आचरण होता है। सम्यग्दर्शन आचरण नहीं है, वहाँ संयम आचरण बिल्कुल होता नहीं। इसलिए यहाँ दो शब्द में पहले सम्यक् आचरण कहने में आया है।

'**प्रथम अस्थिरीभूतस्यं सम्यक् चरणं संयमं**'। प्रथम जो सम्यक् आचरण है, वह श्रद्धान में स्थिर हो करके भी चारित्र अपेक्षा से चंचलरूप है। देखो! है न? '**अस्थिरीभूतस्यं**'।

सम्यग्दर्शन आचरण में... अपने अष्टपाहुड़ में दो आचरण आता है। वही शब्द है। आता है। समझे? शीलपाहुड़ में आता है, शीलपाहुड़ है न? चारित्रपाहुड़ में आता है। सम्यक् चरणं। भगवान आत्मा.. मूल गाथा है। '**अस्थिरीभूतस्यं सम्यक् चरणं संयमं**'। सम्यक् आचरण होता है, वहाँ श्रद्धान में स्थिर (होता है)। सम्यग्दर्शन में निःशंक स्वरूप की प्रतीति का अनुभव। उसमें बिल्कुल दोष है नहीं। परन्तु चारित्र की अपेक्षा से चंचलरूप है। '**अस्थिरीभूतस्यं संयमं**' '**स्थिरीभूतस्य सम्यग्दर्शन**'। उसमें से ऐसे लेना। सम्यग्दर्शन में स्थिरभूत है और संयम की अपेक्षा से अस्थिरीभूतं है। चारित्र का दोष है उसमें। सम्यक् आचरण में संयम आचरण नहीं होता। समझ में आता है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें समझ में आये (ऐसा है)। यह तो सीधी बात सादे में सादी चलती है।

आत्मा अपना शुद्ध स्वरूप, पुण्य-पाप, आस्रव, बन्ध और निमित्त एवं अजीव से हटकर, अपना पूर्णानन्द स्वरूप की प्रतीति का अनुभव करे, उसे सम्यक् आचरण कहने में आता है। यह सम्यक् आचरण, समकिती का सम्यक् आचरण चौथे गुणस्थान में (होता है)। इस आचरण में स्वभाव की श्रद्धा स्थिर है। श्रद्धा में अस्थिरता है नहीं। परन्तु संयम की अस्थिरता, चंचलता सम्यक् चरण में होती है। कहो, समझ में आया? वल्लभदासभाई!

मुमुक्षु : यह नया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नया कुछ नहीं है। यह सब तो अपने शास्त्र में आ गया है। यह तो सेठ को उतारना है उसमें (टेप में) इसलिए लेते हैं। यहाँ तो शास्त्र में ये सब आ गया है। तीन हजार तो उतर गये हैं। रिकार्डिंग। तीन हजार तो रिकार्डिंग उतर गया है। पूरा समयसार ४०५ रिकार्डिंग उतर गया है। पूरा समयसार। ४०५ रिकार्डिंग उतरा है। सब उतरता है। यहाँ तो बीस साल से चलता है। समझ में आया? यह तो तारणस्वामी की साक्षी के शास्त्र में क्या है, वह बताना है। समझ में आया? हम तारण समाज है। परन्तु क्या तारण समाज कहता है, खबर है? खबर नहीं है तो समाज कहाँ से आया? डालचन्दजी! समझ में आया?

भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेन्द्र परमेश्वर, उसके मार्ग में जो कहा, वह अपनी भाषा में तारणस्वामी ने चलती भाषा में लिखा है। सादी साधारण भाषा में। समझ

में आया? '**प्रथम अस्थिरीभूतस्यं सम्यक् चरणं संयमं**' प्रथम जो समकित नि:शंक अपने अनुभव में (आया है)। मैं पूर्णानन्द हूँ। मेरी पर्याय में विकार है, यह मेरा स्वभाव नहीं। कर्म आदि का संयोग व्यवहार से है। परमार्थ से मेरा सम्बन्ध है नहीं। ऐसे सम्यग्दर्शन के आचरण में श्रद्धान में स्थिर होकर भी चारित्र चंचल है। उस चंचलपने को मिटाकर स्थिर होना सो संयम है। लो। पंचम और छट्ठा गुणस्थान की बात है। आंशिक संयम आचरण पाँचवें में है, विशेष संयम आचरण छट्ठे में है।

संयम का अर्थ-आत्मा जैसा शुद्ध परमानन्द ज्ञायक अपने भान, अनुभव में आया था, उसमें लीन, स्थिर, एकाकार हो जाना, उसका नाम संयम आचरण कहने में आया है। उसमें संयम की चपलता जो पहले सम्यग्दर्शन में थी, वह संयम में अस्थिरता, चपलता रहती नहीं। समझ में आया? देखो! '**चंचल संयम चरणं**' ऐसे संयमभाव में चर्या करना, दूसरा संयम आचरण सम्यक्चारित्र है। जहाँ '**शुद्ध तत्त्व निरीक्षणं**'। शुद्ध आत्मिक तत्त्व का ही अनुभव होता है। वह आचरण सफल देखा जाता है। क्या कहते हैं? चौथे गुणस्थान में, पाँचवें और छट्ठे में जहाँ-जहाँ निर्मल सम्यग्दर्शन और संयम का अन्तर निर्विकल्प अनुभव है, वह यथार्थ आचरण सफल देखने में आया है। साथ में पंच महाव्रत का विकल्प मुनि को हो, पंचम गुणस्थान में बारह व्रत का विकल्प हो, चौथे गुणस्थान में भक्ति, दया, दान आदि का विकल्प हो, वह व्यवहार आचरण है। यह परमार्थ आचरण नहीं है। स्वभाव में स्थिर होना, वह परमार्थ आचरण की सफलता है। समझ में आया? निश्चय की बात है न? मुख्य निश्चय की बात है। इसलिए कहा है। देखो!

'**शुद्ध तत्त्व निरीक्षणं**'। ... आचरण सफल देखा जाता है। वही यथार्थ शुद्धात्मा का दर्शन है। लो। '**सार्धं शुद्ध दृष्टितं**'। समझ में आया? यह तो यहाँ समकित आचरण आया न? २२१ में। समझे? समकित कहा न? समकित के साथ आचरण ऐसा लेना। अपना समकित शुद्ध चैतन्य सर्वज्ञ परमात्मा के शासन में कहा ऐसा, ऐसे स्वभाव की अन्तर्दृष्टि करके एकाग्रता होना, सम्यग्दर्शन में अस्थिरता न होना, वह सम्यग्दर्शन का आचरण है। नि:शंक, नि:कांक्षित आदि आठ आचार है या नहीं? समकित का आठ निश्चय आचार है। निश्चय। व्यवहार तो देव-गुरु-शास्त्र में श्रद्धा, उसमें शंका न करना वह व्यवहार विकल्प है। यहाँ निश्चय की बात है।

स्वरूप में नि:शंक पूर्णानन्द प्रभु, मेरा स्वरूप परमात्मा ही मैं हूँ, ऐसा अनुभव में देखना। नि:कांक्ष-पुण्य की भी इच्छा का विकल्प नहीं। समझे? अन्य देव, कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की तो इच्छा नहीं, परन्तु पुण्य के विकल्प की इच्छा नहीं। नि:कांक्ष निश्चयचारित्र है। समकित का निश्चय आचार है। नि:शंक, नि:कांक्षित, निर्विचिकित्सा। सन्देह नहीं कि मैं इतना-इतना पुरुषार्थ करता हूँ, क्यों केवलज्ञान नहीं होता है? समझ में आया? अपने पुरुषार्थ की कमी है, उसमें सन्देह होता नहीं। अमूढ़दृष्टि। मूढ़ नहीं। यह परिपूर्ण स्वभाव कहते हैं, ऐसा है, श्रद्धा में भासता है परन्तु प्रगट नहीं होता। समझ में आया? उलझन में नहीं आता, मूढ़ नहीं होता। मेरे पुरुषार्थ की जितनी कमी है, उतनी पर्याय में पूर्णता आती नहीं। उलझता नहीं। मैं परिपूर्ण आत्मा हूँ। ऐसा अनुभव की दृष्टि में देखना और उसमें उलझन में नहीं आना। क्या कहते हैं? घबराना नहीं। तुम्हारी हिन्दी भाषा हमें बराबर नहीं आती। हमारे में मुंझाना नहीं (कहते हैं), मुझाता नहीं। ऐसी काठियावाड़ी भाषा है। समझे? घबराहट नहीं होना। यह क्या? ध्यान करते-करते ध्यान अस्थिर हो जाता है। अरेरे..! क्या मुझे आत्मा की शुद्धता नहीं प्रगट होगी? पूर्ण नहीं होऊंगा। ऐसी उसमें मूढ़ता आती नहीं।

उपगूहन। अन्दर में अपने गुण की वृद्धि करते हैं। शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान करके, अनुभव करके शुद्धि की वृद्धि करते हैं, वह उपगूहन है। स्थिरिकरण—अपने स्वरूप में स्थिर होना, अस्थिर न होना। वात्सल्य—अपने अनन्त गुण प्रति वात्सल्य-प्रेम। जैसे गाय के बच्चे पर गाय को प्रेम है। गाय कहते हैं न? गौ। बछड़े पर-बच्चे पर। ऐसे अपने अनन्त गुणों पर प्रेम है। राग और विकल्प पर प्रेम नहीं। प्रभावना—प्र-भावना। अपने अनन्त गुण जो दृष्टि में, ज्ञान में लिये हैं उसकी प्र-विशेषरूप से भावना-एकाग्र होकर शुद्धि की वृद्धि करना, उसका नाम निश्चय नि:शंकता से लेकर प्रभावना (तक), समकित का आठ आचरण कहने में आता है। समझ में आया? कितना याद करना इसमें? २२१ हो गयी। २२३।

यस्य हृदये सम्यकते, उदयं शाश्वतं स्थिरं।
तस्य गुणस्य नाथस्य, आसक्तं गुण अनंतयं॥२२३॥

जिसके अन्तरंग में अविनाशी शाश्वत स्थिर समकित ... है न? अर्थ में से.. निकाला। समझ में आया? भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध की ऐसी प्रतीति अनुभव में आ जाए कि क्षायिक दशा जैसी। समझ में आया? भले क्षयोपशम समकित हो तो भी वह क्षायिक लेकर (रहता है)। क्षायिक हो, तब क्षयोपशम का नाश हो। ऐसा समकित शुद्ध शाश्वत उदयं अविनाशी निश्चल ... लिया है।

'**तस्य गुणस्य नाथस्य**' समकिती कैसा है? शेष गुण-अनन्त गुण का स्वामी है। समकिती अनन्ता, अपने अनन्त गुण का स्वामी-धनी है। राग का धनी नहीं, लक्ष्मी का मालिक नहीं, स्त्री का मालिक नहीं, देश-राज का मालिक नहीं। समझ में आय? अनन्त गुण का आता है न? एक बार अनन्त गुण नहीं कहे थे? कितने गुण कहे थे? पण्डितजी! सुना है या नहीं? एक द्रव्य में कितने गुण? कहा था न? नहीं थे? थे। नहीं थे?

अभी तक जितने सिद्ध हुए हैं न? सिद्ध। छह महीने और आठ समय में ६०८ जीव मुक्ति में जाते हैं। छह महीने और आठ समय में ६०८ केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्ति में जाते हैं। इस मुक्ति की संख्या अनन्त है। अनन्त पुद्गल परावर्तन से अनादि से मुक्ति चली (आयी) है। मुक्ति कभी नहीं थी, पहले संसार था और सिद्धपद नहीं था, ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है नहीं। ... अज्ञानी लोक भ्रमणा में कहते हैं। आठ वर्ष संसार बड़ा है। बाद में मुक्ति छोटी है। अरे! अक्ल के खां! अक्ल का खां अर्थात् खा जानेवाला। समझ में आया? पहले आठ वर्ष था और बाद में मुक्ति हुई, ऐसा संसार अनादि में है ही नहीं। अनादि-अनन्त सिद्ध है, अनादि संसार है। पहले संसार (था) और बाद में सिद्ध (होने लगे), मुक्ति, ऐसा अनादि में है नहीं। समझ में आया? डालचन्दजी!

मुमुक्षु : नयी बात आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या नयी बात है, नयी कुछ नहीं। यहाँ तो बहुत बार आ गयी है। एक जीव की अपेक्षा से मुक्ति आदि होती है और अनादि अपेक्षा से तो अनादि आदि बिना अनन्त सिद्ध हैं। पहले सिद्ध कभी एक भी नहीं थे और सब संसारी थे, तो नौ तत्त्व कहाँ रहे अनादि से?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : न रहे, कहाँ से न रहे ? वस्तु अनादि है। नौ तत्त्व अनादि है। वल्लभदासभाई! ये तो वकील (है), वकालत कराते हैं। समझ में आया ? ये.. भीखाभाई! भाई! प्रभु! यह मार्ग तो अन्तर का है। उसमें गड़बड़ थोड़ी भी चले नहीं। थोड़ी हो तो जैसे आँख में कण आता है न ? कंकर, ... वैसे आँख में नहीं (सुहाता है) तो चैतन्य की आँख... आगे कहीं आता है, हाँ! लोचन कहा है। आयेगा, कहाँ होगा कैसे पता पड़े ? समकिती का ज्ञान आँख है। सम्यग्ज्ञान चैतन्य आँख है। उसमें एक कण भी विपरीत हो सकता नहीं।

अनादि से सिद्ध अनन्त हैं। पहले सिद्ध कभी नहीं थे और सिद्ध हुए, (यदि ऐसा हो तो) नौ तत्त्व अनादि के रहते नहीं। पंडितजी! अभ्यास नहीं, वस्तु का व्यवहार शास्त्र का अभ्यास नहीं। उसको यह निश्चय की दृष्टि तो कहाँ से हो ? सेठ! ओलम्भा तो बहुत देते हैं। आहाहा! भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ, उसके आगम का अभ्यास नहीं होता। अरे! आगम का अभ्यास होने पर भी अन्तर-अनुभव नहीं हो तो सम्यग्दर्शन नहीं होता। यहाँ तो अभी आगम के अभ्यास में गड़बड़ (करते हैं), विपरीतता का पार नहीं, उसको सम्यग्दर्शन कभी होता नहीं। समझ में आया ?

सम्यग्दृष्टि समझते हैं कि अनादि से अनन्त सिद्ध (हैं)। अनन्त पुद्गल परावर्तन हो गया। सिद्ध की संख्या कितनी ? अनन्त। उससे निगोद के एक शरीर में अनन्त गुना जीव हैं। वह तो आया नहीं ? बताया था न ? यह लील-फूग है न ? लील-फूग को क्या कहते हैं ? काई-काई। पानी में नहीं होती है ? काई। बटाटा-आलू, शक्करकन्द, मूला। उसका एक राई जितना कण लो तो उसमें असंख्य औदारिकशरीर है। औदारिकशरीर असंख्य। असंख्य चौबीसी के समय जितने। असंख्य चौबीसी के जितना समय होता है, उतना तो एक औदारिकशरीर में है। एक औदारिकशरीर में अभी तक सिद्ध हुए उससे अनन्त गुना जीव हैं। समझ में आया ? लो, अभी तो बहुत आगे का कहना है। अभी तो प्रथम सीढ़ी की बात है।

ऐसे सिद्ध से अनन्तगुना जीव की संख्या (है)। एक शरीर में अनन्तगुना। ऐसे-ऐसे असंख्य शरीर। ऐसे जीव की संख्या सिद्ध से अनन्तगुनी। और जीव की संख्या से

परमाणु की संख्या, ये परमाणु है न, अनन्त परमाणु का स्कन्ध है, पिण्ड है, ये.. ये.. सब, कार्मण शरीर, मन, वाणी, यहाँ मन है रजकण जड़ मिट्टी का, आठ पंखुड़ी के (आकार का) यहाँ है, जीव विचार करता है तो निमित्त है। जैसे आत्मा देखता है तो ये जड़ आँख निमित्त है। ये तो जड़ अनन्त रजकण का पिण्ड है। ऐसे मन है। वह सब जड़। वाणी जड़। उसके सब रजकण सारी दुनिया के सब जीव से अनन्तगुना रजकण है। समझ में आया? सब जीव संसारी से रजकण की परमाणु अनादि अस्तित्व अनादि-अनन्त अनन्तगुणी संख्या है। उससे अनन्तगुनी संख्या त्रिकाल का समय है। एक सेकेण्ड के असंख्य समय जाए। क्या (कहा)? एक सेकेण्ड में असंख्य समय जाए। काल का सूक्ष्म भाग समय। एक सेकेण्ड में आँख ऐसा करे तो असंख्य समय (जाए)। ऐसा त्रिकाल का समय, अनादि-अनन्त समय, वह परमाणु की संख्या से अनन्तगुना है। त्रिकाल समय से आकाश के प्रदेश अनन्त गुना हैं। है.. है.. है.. है.. अस्ति नहीं है, ऐसा है? है.. है.. है.. त्रिकाल पर्याय से आकाश के प्रदेश अनन्त गुना है। और उससे अनन्तगुना एक जीव और एक परमाणु के अनन्त गुण हैं। समझ में आया? कहा न? क्या कहा? समझ में आया या नहीं? २२३ (गाथा) चलती है या नहीं?

गुण अनन्त, शब्द पड़ा है या नहीं? चौथा पद क्या है? अनन्त (का अर्थ) अनन्त इतना। कितना? अभी कहा इतना, कहा इतना। कहते हैं कि '**तस्य गुणस्य नाथस्य, आसक्तं गुण अनंतयं**'। अनन्त गुण दृष्टि में आये हैं, उन अनन्त गुण का ज्ञानी स्वामी है। सम्यग्दृष्टि अनन्त-अनन्त ऐसे गुण, ऐसा आत्मा अनन्त गुण का एक द्रव्य। उसका सम्यग्दृष्टि स्वामी है। राग का नहीं। राग में पड़ा हो, फिर भी वह राग का स्वामी नहीं है। राग का स्वामी नहीं, देह का स्वामी नहीं, कर्म का स्वामी नहीं, धन का स्वामी नहीं। कहो, सेठ! मकान का स्वामी नहीं। यहाँ मकान किया था सेठ ने, तब ये भाई बोले थे यह तो पत्थर का बना हुआ है। बात सच्ची है। डालचन्दजी! कहा था या नहीं? पत्थर से बना है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे से कुछ बना नहीं, वह तो पत्थर से बना है। पैसे से बना कहना व्यवहार है। पैसा भिन्न चीज़ है, पत्थर भिन्न चीज़ है। समझ में आया? पैसा अनन्त परमाणु हैं। दूसरे परमाणु से दूसरा परमाणु होता है? समझ में आया? यहाँ पहले कहा न?

जीव से अनन्तगुना परमाणु हैं। अनन्त परमाणु कैसे रहेंगे अपनी सत्ता में? कि दूसरे अनन्त परमाणु जो पैसा है, उस पैसे में अनन्त परमाणु हैं। एक नोट में अनन्त परमाणु है। नोट से मकान बना है? दूसरे परमाणु से दूसरा परमाणु बनता है? ...चन्दजी! क्या है यह? आहाहा! अनन्तगुना जीव से पुद्गल रहते नहीं। दूसरा पुद्गल से दूसरा पुद्गल बन जाए तो दोनों एक हो जाए। आहाहा!

कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि अन्तरंग में '**तस्य गुणस्य नाथस्य**' वह गुण का नाथ है। उसका अर्थ—अपना अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसका स्वामी है। दृष्टि, ज्ञान में जितना प्रगट हुआ, उतनी पर्याय की रक्षा करता है और जितनी पर्याय आदि प्रगट नहीं की, उसको प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। अनन्त गुण तो स्वरूप में है। पर्याय में-अवस्था में अल्प गुणांश भी प्रगट हुआ है, उसकी रक्षा (करता है)। नाथ का अर्थ-जोगक्षेम को करनेवाले को नाथ कहते हैं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, उसमें सर्व गुणांश, वह समकित। सर्व गुण का एक-एक अंश प्रगट हुआ है। समझ में आया? प्रगट हुआ, उसका रक्षण करता है और नहीं प्रगट हुआ, उसे प्रयत्न करके प्राप्त करते हैं। उसका नाम अनन्त गुण का स्वामी और पर्याय का स्वामी सम्यग्दृष्टि है। सम्यग्दृष्टि राग, पुण्य, व्यवहार का स्वामी है नहीं। समझ में आया? देखो!

'**आसक्तं गुण अनंतयं**' देखो! '**आसक्तं**' का अर्थ वह किया कि अनन्त गुण पाये जाते हैं। दृष्टि में अनन्त गुण हैं और पर्याय में भी अनन्त गुण का एक अंश प्राप्त हुआ है। आहाहा! पर्याय समझे? व्यक्त। गुण शक्ति (रूप) है। अनन्त गुण की शक्ति जो अनन्त गुण है, उसमें से अनुभव दृष्टि करके अनन्त गुण जितने हैं, उसमें से एक-एक अंश निर्मलता का सम्यग्दर्शन में (प्रगट हो जाते हैं)। सर्व गुणांश, वह समकित। इतना अंश प्रगट हुआ है। बाकी प्रगट करने का प्रयत्न है। उसको सम्यग्दृष्टि कहते हैं। यह सम्यक् आचरण की बात चलती है। ओहोहो!

मुमुक्षु : पहले तो चारित्र का आचरण आवे, बाद में समकित का।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र धूल में आवे। पहले से कहाँ से आता है? ऐई! डालचन्दजी! क्या कहा? पहले से व्रत ले लेना, ब्रह्मचर्य लेना, दया पालना, संयम पालना। बस! संयम आया, इसलिए अन्दर समकित होगा ही।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : है नहीं। अन्दर सम्यग्दर्शन है नहीं तो संयम कहाँ से आया? व्रत और महाव्रत पालकर मर जाए, उसमें क्या है? छह-छह महीने के उपवास करे। समझ में आया? वह तो बात की थी न? '**उग्र तव**' कल कहा था न? '**उग्र तव**' शब्द आया था न? कल आया था न? '**उग्र तव**'। कल आया था एक श्लोक में। (श्लोक-२०८)। उग्र तप करे, मर जाए बारह व्रत के, उपवास करके, सामायिक और प्रौषध उसके माने हुए (करके) मर जाए तो क्या है? सम्यग्दर्शन की अन्तर अनुभव दृष्टि बिना, वह सब तो विकल्प है, पुण्य के परिणाम हैं और धर्म मानते हैं तो मिथ्यात्व की पुष्टि करते हैं। अनन्त पाप की पुष्टि करते हैं। समझ में आया?

दृष्टान्त देते हैं न? 'बिल्ली निकालते ऊँट घुसा'। आपने सुना है? नहीं सुना है। बिल्ली-बिल्ली होती है न? बिल्ली। बिल्ली-बिल्ली। बिल्ली नहीं होती? एक बुढ़िया थी, बुढ़िया। वृद्ध बाई। वह थोड़ी कंजूस थी। उसके घर के पास एक वाड़ा था। वाड़ा समझे? खाली जगह। खुली जगह थी। खुली जगह में एक बिल्ली मर गयी। बिल्ली मर गयी। बाई ने देखा कि बिल्ली मर गयी, अब क्या करना? हरिजन को... क्या कहते हैं? भंगी। भंगी को बोलेंगे तो एक प्याली, दो प्याली.. अनाज की प्याली क्या कहते हैं? (अनाज) देना पड़े। इतना अनाज देना पड़ेगा। गुस्सता से लेकर, टोकरी में राख लेकर, टोकरी होती है न? उसमें चूल्हे में से राख निकालकर बाहर डालने गयी। बाहर डालने गयी और दरवाजा था, खाली दरवाजा खुला रह गया। वहाँ एक ऊँट घूमता था, ऊँट। ऊँट समझे? ऊँट घूमता था, मरने की तैयारी जैसा जीर्ण (हो गया था)। बाई डालने गयी तो ऊँट अन्दर घुस गया। अन्दर घुसा और ऊँट मर गया। डालकर वापस आयी और देखा, हाय.. हाय..! इसका क्या करना? बिल्ली को तो फेंक दिया, इस ऊँट का क्या करना? इसे तो उठाकर फेंक नहीं सके। हरिजन को बुलाया। (उन्होंने) चार मण गेहूँ माँगे। चार मण गेहूँ। एक बोरी गेहूँ चाहिए, तो निकालेंगे। हाय.. हाय..! यह दृष्टान्त हुआ।

वैसे अज्ञानी अकेला व्रत, तप, संयम, इन्द्रिय दमन का राग करते-करते मुझे धर्म हो जाएगा। वह बिल्ली मरी है। समझ में आया? उसकी जहाँ रक्षा करने जाता है, वहाँ मिथ्यात्व का ऊँट अन्दर घुस जाता है। समझ में आया? राग की क्रिया का स्वामी होता

है। राग मेरा कार्य है। दया, दान, व्रत, ब्रह्मचर्य आदि का विकल्प मेरा कार्य है। राग का स्वामी होता है तो मिथ्यात्व का लड़का-ऊँट अन्दर घुस गया। ऊँट मर गया। मिथ्याश्रद्धा में तेरे आत्मा की जिन्दा ही मृत्यु हो गयी। समझ में आया? करने गया व्रत, नियम, परन्तु स्वभाव का तो भान है नहीं। इसलिए राग की क्रिया का कर्ता हुए बिना रहता नहीं। समझ में आया? कड़क बात है।

कहते हैं कि पहले सम्यग्दर्शन का भान बिना व्रतादि का आचरण, संयम का आचरण कभी तीन काल में होता नहीं। बाहर से दुनिया देखे और दुनिया माने कि सत्य वस्तु में कोई विरोध नहीं आता, वह झूठ है। २२४।

सम्यकतं येन दिट्ठंते उदयं भुवनत्रयं।
लोकालोकविलोकं च, आलबाले मुखं यथा॥२२४॥

देखो! कितना सम्यग्दर्शन का माहात्म्य और क्या स्वरूप है, उसका स्पष्टीकरण करते हैं। जिसने सम्यग्दर्शन का अनुभव कर लिया है, '**दिट्ठंते**' का अर्थ अनुभव। भगवान आत्मा राग पुण्य-पाप का विकल्प होने पर भी, व्रतादि का विकल्प होने पर भी मेरा स्वरूप उससे भिन्न है, उसका मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ। ऐसा सम्यग्दर्शन अनुभव कर लिया है। '**उदयं भुवन त्रयं**' तीन लोक का ज्ञान हो गया। '**उदयं भुवन त्रयं**' श्रुतज्ञान से, भावश्रुतज्ञान से तीन लोक में क्या है, सबका ज्ञान हो गया। कहाँ-कहाँ कैसे द्रव्य, गुण, पर्याय परिणमते हैं, स्वतन्त्र कैसी चीज़ है, नौ (तत्त्व का) भान होने से भुवन-तीन लोक का ज्ञान सम्यग्दृष्टि को होता है। प्रत्यक्ष नहीं। परन्तु श्रुतज्ञान के बल से स्वर्ग, नरक में क्या पर्याय है, समकिती कैसा है, मिथ्यादृष्टि कैसा है, सबका ज्ञान भावश्रुतज्ञान में आ जाता है। समझ में आया? '**उदयं भुवन त्रयं**' क्या तीन भुवन अन्दर में प्रगट होता है? भुवन त्रय का ज्ञान प्रगट होता है। पाठ तो ऐसा है, '**उदयं**'। समझ में आया?

'**लोकालोकविलोकं**' उसने लोक-अलोक को अच्छी तरह देख लिया है। और सम्यग्दृष्टि, अपने स्वभाव के भान में ज्ञान ऐसा हुआ है, कि जिस ज्ञान द्वारा लोक और अलोक को इस तरह देखा है, जैसे निर्मल जल के कुण्ड में मुख देखा जाता है। है न? '**आलबाले मुखं**'। पानी में-जल में जैसे मुख देखता है, ऐसे अपने आत्मा में अपना भान होकर सम्यग्ज्ञान ऐसा हुआ (तो) लोकालोक का ज्ञान ख्याल आ गया। समझ में आया?

कोई भी उसकी प्रतीति के बाहर रहा नहीं। समझ में आया? थोड़ा-थोड़ा अर्थ ठीक किया है। शीतलप्रसाद ने। थोड़ा-थोड़ा अर्थ ठीक किया है। कहीं-कहीं भूल की है। जहाँ व्यवहार आता है, वहाँ शीतलप्रसाद ने भूल की है। बराबर अर्थ, पूरा अर्थ सच्चा है नहीं। क्या कहते हैं? उसमें जो लिखा है, वह सब पूरा अर्थ सच्चा नहीं है। कोई-कोई में गड़बड़ है। यहाँ तो परीक्षा सत्य की है। समझ में आया? कोई-कोई जगह व्यवहार से निश्चय होता है, व्यवहार पहले आता है, ऐसा लिखा है। ऐसा है नहीं। तारणस्वामी से भी विरुद्ध होता है। शास्त्र से भी विरुद्ध हो जाता है। यहाँ तो सीधी निश्चय की बात कहते हैं। सेठ लोगों को मालूम नहीं, पण्डितों को प्रमाद में जाए। प्रमाद में। समझे? पण्डित के साथ प्रमाद मिलता है। भाई! यह मोक्षमार्ग की रीत है। उसकी गद्दी पर बैठना, उसका मार्ग चलाना, बड़ी जिम्मेदारी है। सेठ! देखो!

'**आलबाले मुखं यथा**' समझे? '**आलबाले**' अर्थात् पानी न? भाई! कुण्ड... कुण्ड... ठीक! '**आलबाले**' निर्मल पानी का कुण्ड। कुण्ड में ऐसे देखे तो मुख दिखे। ऐसे अपने दर्शन में सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दृष्टि को ही सम्यग्ज्ञान होता है। दृष्टि जहाँ मिथ्यात्व है, वहाँ ज्ञान ग्यारह अंग नौ पूर्व पढ़े तो भी अज्ञान है, पाखण्ड है, मिथ्यात्व है। समझ में आया? टीका करके भाई को भेजा है, ठीक किया है। ... आप एकबार देखो। समझ में आया? क्या है, देखना तो पड़ेगा या नहीं? सेठ के बाद आपकी बारी है।

लोक और अलोक का ज्ञान। सम्यग्दृष्टि को ज्ञान में शंका बिल्कुल नहीं रहती। सब स्थिति का यथार्थ ज्ञान हो जाता है। ऐसा लोकालोक का ज्ञान सम्यग्ज्ञान में-श्रुतज्ञान में (हो जाता है)। आहाहा! ... तत्त्व कैसा है, पर्याय कैसी है, क्या वस्तु है, सब आ गया। नौ तत्त्व में फेरफार होता नहीं। समझ में आया? विशेष बात है, अपने सार-सार कहते हैं। कौन-सी (गाथा) आयी? २२४। अब, २३६। बीच में मद्य का त्याग, इसका त्याग आदि की बात है, व्यवहार की बात है। सम्यग्दर्शन हो तो ऐसे ... त्याग, ... त्याग होता है राग में। २३६। २३६ देखो।

दर्शनं तत्त्वार्थ श्रद्धानं, तीर्थं शुद्ध दृष्टितं।
ज्ञानमूर्ति सम्पूर्ण, स्वात्म दर्शन चिन्तनं॥२३६॥

देखो! तत्त्वार्थ श्रद्धान लिया, भाई! उमास्वामी का है। तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं।

वह शब्द लिया है। मूल बात यह है। तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं। व्यवहार समकित नहीं, हों! यह निश्चय है। उसमें थोड़ा व्यवहार लिखा है। निश्चय एक ही है। इसने अर्थ में दो डाला है। भूल है। सात तत्त्व का व्यवहार और निश्चयनय से यथार्थ श्रद्धान करना। वह भूल है। यहाँ भी कहा है कि जीवादि तत्त्व का सदा श्रद्धान करना, उसमें कोई विपरीत नहीं.. वह व्यवहार समकित है। निश्चय सम्यग्दर्शन सदा अपने से भिन्न है। दो लिया है। यहाँ तो एक ही समकित की बात है। समझ में आया? उसमें अर्थ में भी भूल है। वर्तमान चलता है, ऐसा उसमें लिख दिया है। पण्डितजी! यह याद करना। तत्त्वार्थ श्रद्धानं जो है, वह निश्चय समकित है। व्यवहार नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : 'तीर्थं शुद्ध दृष्टितं'। उमास्वामी ने जो तत्त्वार्थ श्रद्धान कहा, वह यहाँ कहते हैं। उसका शब्द लेकर ही कहते हैं। तत्त्वार्थ का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। तत्त्वार्थ में आत्मज्ञान आ जाता है। समझ में आया? ओहोहो! तत्त्वार्थ का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। तत्त्वार्थ क्या? सात। ऐसे नौ पदार्थ, ऐसे सात। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। प्रत्येक पर्याय कैसी-कैसी है और जीव कैसा है, सब यथार्थ एकरूप लिया है। सात तत्त्व का नाम एक लिया है। समझे? तत्त्वार्थ में। जीव, अजीव आदि तत्त्व। ऐसे लिया है न? भाई! सात तत्त्व का एकवचन लिया है। एकवचन है। यहाँ तो एकवचन, भेद नहीं। सात की भेद की श्रद्धा वह व्यवहार श्रद्धा। नौ तत्त्व की भेद श्रद्धा, वह व्यवहार है। यह बात यहाँ नहीं लेना है। उमास्वामी ने भी नहीं लिया है। उसका शब्द यहाँ डाला है।

'दर्शनं तत्त्वार्थ श्रद्धानं'। तत्त्वार्थ का श्रद्धान करन सम्यग्दर्शन है। यह भवसागर से तिरने का जहाज (है)। देखो! जो व्यवहार समकित है, वह विकल्प है, वह तो पराश्रित व्यवहार है। व्यवहार भवसागर तिरने का उपाय है नहीं। व्यवहार पराश्रय, निश्चय स्वआश्रय। ये दोनों तो महा सिद्धान्त है। समझ में आया? कोई ऐसा कहे कि तत्त्वार्थ श्रद्धानं व्यवहार है। तो यहाँ कहते हैं कि **'तीर्थं शुद्ध दृष्टितं'**। उससे तो तीर्थ है। भवसागर तिरने का उपाय है। निर्विकल्प दृष्टि नहीं हो तो भवसागर तिरने का उपाय हो सकता नहीं। व्यवहार समकित है, वह तो विकल्प राग है। समझ में आया?

निश्चय और व्यवहार, दो प्रकार का समकित नहीं। समकित एक है। समकित का

कथन दो प्रकार का है। व्यवहार और निश्चय, कथन दो प्रकार का है। समकित दो प्रकार का नहीं है। समकित एक प्रकार का है। आहा! समझ में आया? कथन आये। अपना तत्त्वार्थ का भान ज्ञायकमूर्ति, राग की प्रतीत, भान हो गया (कि) स्वभाव में राग नहीं है, तो उसमें सातों तत्त्वों का भान आत्मा का भान होने से आ गया। उसमें नौ तत्त्व भेदयुक्त, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, भगवान की वाणी की श्रद्धा, भगवान की श्रद्धा, यह सब विकल्प है, वह सब राग है, समकित नहीं। उसको निश्चय समकित के साथ ऐसा विकल्प देखकर व्यवहार समकित संसार तिरने का उपाय नहीं है, वह मोक्ष का मार्ग नहीं है। आहा! कितना याद करना? बहुत फर्क हो गया अभी तो। इतना फर्क पड़ गया है कि वक्ता को तत्त्व की खबर नहीं। श्रोता को तो कहाँ से हो? जो कहते हैं, जय महाराज! डालचन्दजी! एक पुस्तक लेकर आये, बनाओ। सेठ बना दे। लाओ, पाँच हजार खर्चकर बना देते हैं। भले अन्दर जहर भरा हो। सेठ! जिसमें जैनदर्शन की क्या चीज़ है, उससे विरुद्ध लिखा हो। सेठ साहब! ऐसा एक पुस्तक है। हमने बनाया है। जाओ, छपवा लो। मालूम है तुम्हें, उसमें विपरीतता कितनी है? विपरीतता मालूम है? क्या कहते हैं? क्या कहा? देखा ही नहीं। चलो, छपवा दो। तुम्हारी मौजूदगी में कहते हैं। आप दोनों बैठे हो। गुप्त बात तो है नहीं।

देखो! तारणस्वामी कैसे स्पष्ट बात कहते हैं! तत्त्वार्थ श्रद्धान दर्शनं। यदि कोई उसे व्यवहार कहे, तो '**तीर्थं शुद्ध दृष्टितं**'। शुद्ध दृष्टि और तिरनेवाला। दो बोल लिये। भाई! शुद्ध दृष्टितं, दृष्टिमय शुद्ध दृष्टि है, ऐसा कहा है। आहाहा! समझ में आया? डालचन्दजी! थोड़ा ओलम्भा सुनना पड़े, क्या करे? तारणस्वामी तो अकेली अध्यात्म दृष्टि और जिन-जिन की ही पुकार है। उसकी बात अन्य के साथ एक अक्षर मिलती नहीं। समझ में आया? सम्प्रदायवाले जो व्यवहार से निश्चय, व्यवहार से निश्चय (कहते हैं), उसके साथ मिलती नहीं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, '**दर्शनं तत्त्वार्थ श्रद्धानं**' यह भवसागर से तिरने का तीर्थ (है)। सीधा शब्द है न? भाई! पण्डितजी! या '**तीर्थं शुद्ध दृष्टितं**' अलग है निश्चय? ऐसा नहीं है। उसके साथ सम्बन्ध है। मुझे दूसरा कहना है। कोई ऐसा कहे कि, '**दर्शनं तत्त्वार्थ श्रद्धानं**' व्यवहार और '**तीर्थं शुद्ध दृष्टितं**' निश्चय। ऐसा नहीं है। दो भाग ही नहीं है

उसमें। समझ में आया? समझने की चीज़ है। मूल बात (है)। '**दर्शनं तत्त्वार्थ श्रद्धानं**' और कोई उसमें ऐसा निकाले कि '**दर्शनं तीर्थं शुद्ध**' निश्चय। ऐसा हे नहीं। '**दर्शनं तत्त्वार्थ श्रद्धानं**'। जैसे भगवान ने सात (तत्त्व) कहे, ऐसा अपने आत्मज्ञान में सातों का भान अन्तर में प्रतीत में आना, अनुभव में आत्मा आना उसका नाम तत्त्वार्थ श्रद्धान है। तत्त्वार्थ श्रद्धान में आत्मज्ञान आ जाता है, आत्मज्ञान में तत्त्वार्थ श्रद्धान आ जाता है। दोनों एक बात है। आहाहा!

'**तीर्थं**' और वह भवसागर से तिरने का तीर्थ है, जहाज है। क्या व्यवहार समकित? विकल्प तो पराश्रित है, व्यवहार पराश्रित है। निश्चय स्वाश्रित। यह तो महासिद्धान्त त्रिकाल का है। तो व्यवहार समकित नो तत्त्व का तत्त्वार्थ श्रद्धान, वह संसार तिरने का जहाज है? बिल्कुल नहीं। व्यवहार समकित बन्ध का कारण है, विकल्प है। वह बात यहाँ है ही नहीं। समझ में आया? देखो! यह श्रावकाचार की बात चलती है। इसलिए पहले श्रावकाचार लिया, बाद में ज्ञान समुच्चयसार लिया था। पिछले साल लिया था न? ... इस बार श्रावकाचार आ गया। आये वह आये। दिमाग में ये आया कि इसे लो। लिखा तो सबमें है। सार-सार गाथा लेते हैं। सब पुस्तक में से। समझ में आया? लाल अक्षर से लिखा है, देखो! हमारे पास लाल शीश पैन रहती है, हों! शीश पैन लाल रहती है।

यही शुद्ध दृष्टिमय है। भाई! ऐसे लिया है, देखो! क्या कहा? जो तत्त्वार्थ श्रद्धानं आत्मज्ञानपूर्वक नौ तत्त्व का, सातों तत्त्वों का अन्दर भान हुआ है, वह शुद्ध दृष्टिमय है, व्यवहार समकित अशुद्ध है, उपचार है, व्यवहार है, निमित्त है। वह नहीं। उसकी बात यहाँ नहीं है। ठीक, उतरता तो है। एक बार सुनेंगे और व्याख्यान चलता है उसमें से ... कि ऐसा कहते हैं, ऐसा है। समझ में आया?

ज्ञानमूर्ति। भाई! यह लिया। देखा! एक तत्त्वार्थ श्रद्धान निश्चय सिद्ध करने को कितने शब्द लिये हैं! कोई उसमें से व्यवहार निकाले तो वह सिद्ध नहीं होता है। ज्ञानमूर्ति। अकेला ज्ञान, स्वसंवेदनज्ञान। शास्त्र का ज्ञान नहीं, शास्त्र का ज्ञान विकल्पात्मक है। यहाँ तो तत्त्वार्थ स्वभाव की श्रद्धा हुई, अनुभव प्रतीत में आत्मा आया, सर्वज्ञ जैसा आया तो ज्ञानमूर्ति (आया)। पूरा ज्ञानस्वरूप मैं हूँ, ऐसा वेदन हो गया। ज्ञान का स्वसंवेदन होना, उसमें ज्ञानमूर्ति आया। सम्यग्ज्ञान कहा। निश्चय समकित, ज्ञान है। समकित भी निश्चय

है, ज्ञान भी निश्चय है। समझ में आया? लोग कहते हैं न कि, व्यवहार समकित है, वहाँ निश्चय ज्ञान कैसे है? ज्ञान भी व्यवहार और आचरण भी व्यवहार, ऐसा कहते हैं। अभी आया। हमारा बाहर आने के बाद। नहीं तो सब ऐसे ही पड़े थे। हलमहला, चलमचला। ईश्वरचन्दजी! बहुत गड़बड़ी चली है। पहले तत्त्वार्थ श्रद्धानं व्यवहार है। व्यवहार श्रद्धान में निश्चय ज्ञान कहाँ से आया? इसलिए व्यवहार ज्ञान है। साथ में आत्म व्यवहार तीनों मोक्ष का मार्ग (है), उससे निश्चय पायेगा। ऐसा पत्रों में बहुत आता है। सब झूठ बात। समझ में आया? ...चन्दजी! आता है या नहीं वहाँ? वहाँ हमारे पास तो पत्र बहुत आते हैं।

यही शुद्धदृष्टिमय है और यही ज्ञानमूर्ति है। अपने सर्व गुणों से पूर्ण है। देखो! अनन्त गुण से दृष्टि में पूर्ण है। पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण। अकेला शुद्ध आत्मा। और अपने ही आत्मा का दर्शन। देखो! '**स्वात्म दर्शन चिन्तनं**', देखो! '**स्वात्म दर्शन चिन्तनं**'। दो प्रकार नहीं, एक ही बात सबमें है। चारों पद में अकेले निश्चय समकित की बात की है। समझ में आया? बहुत गाथा (अलौकिक है)। लोग भी पढ़ते हैं, उसमें भी गड़बड़ करते होंगे। मालूम नहीं है कि तत्त्वार्थ श्रद्धान क्या है। कल एक भाई कहते थे, आपके हैं न? सांगली.. सांगली कहाँ है आपका गाँव? सांगली। समझे नहीं तो क्या करे? हम पहले ऐसा नहीं सुनते थे, दूसरा सुनते थे। है कहाँ तो सच्चा सुनावे? सब गड़बड़ ही गड़बड़ चलती है। बराबर है? पण्डितजी! यह तो जानने की बात है। आहाहा..!

भगवान! तेरी चीज़ सत्य क्या है और शास्त्र में क्या कहा है, उसकी समझ बिना विपरीत अर्थ और उल्टा अर्थ निकाले बिना रहे ही नहीं। समझ में आया? वह तो अपने आ गया था न? अर्थ-अनर्थ। नहीं? एक श्लोक में आ गया। एक श्लोक में आया था। अर्थ का अनर्थ। जैसा शास्त्र अर्थ कहते हैं और भाव ऐसा है, ऐसा समझे बिना अर्थ का अनर्थ करे। कहा था, यशोविजय का कहा था, 'जाति अंधनो दोष नहीं..' आँख से अन्धा है तो बेचारा कुछ देखता नहीं। 'जाति अंधनो दोष नहीं, .. जाने नहीं अर्थ, पण मिथ्यादृष्टि तेथी आकरो, करे अर्थना अनर्थ।' डालचन्दजी! कड़क बात है, हों! अकेले व्यवहार को माननेवाले को तो चोट लगती है। विरोध हो गया। अभी भी विरोध करते हैं। तत्त्व को समझते नहीं है, क्या कहा।

कितने बोल लिये हैं इसमें, देखो! '**दर्शनं तत्त्वार्थ श्रद्धानं**' वही तत्त्वार्थ श्रद्धान।

निश्चय सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान में। वही '**तीर्थं शुद्ध दृष्टितं**' वही शुद्ध सम्यग्दर्शन, वही भवसागर तरने का उपाय, वही '**ज्ञानमूर्ति सम्पूर्ण**' सम्पूर्ण ज्ञान का देखनेवाला, माननेवाला। और '**स्वात्म दर्शन चिन्तनं**'। अपने आत्मा का दर्शन और चिन्तन अर्थात् अनुभव। देखो! एक गाथा में उमास्वामी ने कहा था तत्त्वार्थ श्रद्धान, वर्तमान में लोग उसको व्यवहार समकित कहते हैं। इसलिए पूरे अर्थ में बहुत भूल हो गयी। समझ में आया? ऐसा है नहीं। क्या मोक्षमार्ग है तत्त्वार्थश्रद्धा या बन्धमार्ग है? व्यवहार समकित तो आस्रव है, विकल्प है। वह तत्त्वार्थश्रद्धा व्यवहारमोक्षमार्ग है? ... अर्थ में पहले से कह दिया है, तत्त्वार्थ श्रद्धान व्यवहार समकित और आत्मा का ज्ञान निश्चय समकित। लेकिन दोनों एक है, सुन तो सही। तत्त्वार्थ तो भेदवाला तत्त्वार्थ श्रद्धान हो तो व्यवहार है। परन्तु जहाँ अभेद तत्त्वार्थ श्रद्धान एक स्वरूप का भान करके आत्मा का ज्ञान साथ में हुआ, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

अपने सर्व गुणों से पूर्ण ऐसा आत्मा। अपने ही आत्मा का दर्शन। ऐसा पूर्ण प्रभु उसका अनुभव, तीनों ले लिया। कौन तीन? पहले तो ऐसे लिया कि तत्त्वार्थ (श्रद्धानं) सम्यग्दर्शनं, वह भवसागर तिरने का उपाय लिया। बाद में तीन लिया। वही शुद्ध दृष्टिमय है-एक। वही ज्ञानमूर्ति है-दो। वह सर्व गुणों से पूर्ण का अनुभव करता है-आचरण। यह तीनों लिये। दर्शन, ज्ञान और चारित्र। समझ में आया? '**ज्ञानमूर्ति सम्पूर्ण, स्वात्म दर्शन चिन्तनं।**' यह अनुभव लिया, आचरण लिया। दर्शन का आचरण, ज्ञान का आचरण, स्वरूप का आचरण-स्थिरता, उसका नाम मोक्ष का मार्ग और भवसागर तिरने का वह तीर्थ है। बाकी सब बाह्य का व्यवहार तीर्थ है। शुभभाव होता है तो यात्रा आदि का भाव हो। होता है, परन्तु वह भवसागर से तिरने का कारण है, (ऐसा नहीं है)। समझ में आया?

मुमुक्षु : साधन तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : साधन-फाधन है नहीं। वह तो धर्मी जीव को पूर्ण वीतराग न हो, तब ऐसा भगवान का प्रतिमा का, वाणी का, यात्रा का शुभभाव होता है। होता है, नहीं हो -ऐसा नहीं है। परन्तु वह भाव पाप से बचने को पुण्यभाव जितनी कीमत है। सेठ! उसकी कीमत कोई संवर, निर्जरा में डाल दे (तो) बड़ी विपरीत दृष्टि है। समझ में आया? २३६ हो गयी। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)